RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-10
October-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i10.021

ब्रिटिश अर्थव्यवस्था : औद्योगिक विकास एवं व्यापार की स्थिति

Shailesh Ranjan

UGC - NET

मुगल साम्राज्य का पतन हो रहा था, उस समय भारत के स्थानीय राज्यों का उदय हो रहा था। सत्रहवीं शताब्दी में भारत विश्व के सबसे उन्नत देशों में से एक था। इस कथन की पुष्टि ब्रिटिश अर्थशास्त्री एडम स्मिथ जैसे लेखकों ने भी की है। ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत में मानव हल, बैल की खेती तथा साधारण औजार की मदद से दस्तकारी पर टिका आत्म निर्भर देश था। गाँवों में अक्सर कृषक निवास करते थे और सारा गाँव, गाँव के जमीन का मालिक होता था। लगान की राशि, नियमित रूप से सारे ग्राम समुदाय की ओर से चुकाई जाती थी।[i] राजनीतिक हलचल, धार्मिक उथल-पुथल और विनाशकारी मुद्दों के बावजूद अंग्रेजों के आगमन से पूर्व गाँवों को प्रकृति लगभग अपरिवर्तनीय ही रही। नई विदेशी आक्रमण हुए, राजवंश बदले, आपसी लड़ाइयों के पश्चात् विभिन्न राज्यों के भू-भागों का बँटवारा हुआ, नए राज्य बने और बिगड़े क्रांतिया होती रहीं, हिंदू, पठान, मुगल, मराठा, सिक्ख मालिक बने, लेकिन आर्थिक स्थिति गाँवों की ज्यों की त्यों बनी रही।[ii] प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था एवं मध्यकालीन राज्य मुख्य रूप से ऐसे राज्य में जो आम भारतीय के जीवन को व्यापक तौर पर प्रभावित नहीं करते थे। राज्य सुरक्षा एवं कराधान के अतिरिक्त नागरिकों के जीवन को नियंत्रित नहीं करता था। अंत: अधिकांश भारतीय समुदाय व्यक्तिगत व सामाजिक क्रियाकलापों में एक बड़ी सीमा तक स्वतंत्र थे।

ब्रिटिश कंपनी के भारत आगमन के समय भारत के लोगों का मुख्य व्यावसायिक कृषि एवं कुटीर उद्योग था। मिट्टी, खेत की जुताई, फसल की बुआई, कटाई, खरपतवार की सफाई, फसलों का हेर-फेर, मिश्रित फसलों की प्रणाली, और जमीन परती छोड़ने के बारे में जितना भारतीय किसान को पता है इतनी अधिक सावधानी के साथ खेती की तस्वीर निश्चिय ही मैंने और कहीं नहीं देखी है।[iii] अठारहवीं शताब्दी में भारत की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान अवश्य थी फिर भी, उस समय देश में उद्योग का अच्छा-खासा विकास हो चुका था। इसी आधार पर 1916-18 में ''भारतीय औद्योगिक आयोग'' ने अपनी रिर्पोट में लिखा था कि ''यूरोप में आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के विकास के समय भारत अपने शासकों की समृद्धि और अपने कारीगरों की कलात्मक कारीगरी के लिए विख्यात था और जब पश्चिम के साहसी सौदागर पहली बार भारत पहुँचे तो इस देश का औद्योगिक विकास किसी कीमत पर अपेक्षाकृत विकसित यूरोपीय देशों से कम नहीं था।[iv]

रजनी पामदत का कहना है कि ''प्लासी के युद्ध के पश्चात् जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने सत्ता संभाली तो इसके विकास के लक्षण भारत में मौजूद थे, लेकिन ब्रिटिश शासन में इन संभावनाओं को समाप्त कर दिया गया। व्यापार के नाम पर अंग्रेजों द्वारा शोषण के लिए रजनी पामदत ने लिखा है कि- ''कंपनी के एजेंट किसानों, व्यापारियों आदि को जबरदस्ती एक-चौथाई कीमत देकर उनके उत्पाद को हड़प रहे थे और किसानों को मारपीट कर वे अपनी एक रुपये की वस्तु पाँच रुपये में बेच रहे थे।''[v] कंपनी के शासन की अलोचना करते हुए एडमंड वर्क ने कहा है कि ''यदि हमें भारत छोड़कर भागना पड़े तो हमारे शासन के शर्मनाक वर्षों की कहानी कहने के लिए जो प्रमाण बचे रहेंगे उनसे यही पता चलेगा कि यहाँ शासन किसी भी अर्थ में औरांग-उटांग या चीते के शासन से अच्छा नहीं था।''[vi] ब्रिटिश शासन ने देशी-निर्माता व्यापारी और साहूकार वर्ग पर रोक लगाई जिससे वे विदेशी ही नहीं, वरन अच्छे-खासे आंतरिक अंतरनगरीय व्यापार-वाणिज्य से भी वंचित हो गए।[अपप] ब्रिटेन ने भारत के औद्योगिक विकास में अडंगा लगाकर परंपरागत कृषि के आधुनिक समृद्ध लाभानिमुख कृषि में संपूर्ण रूपांतरण को रोका जिसमें से बेकार हो गए श्रमिकों को उद्योगों और नौकरियों में खपाया जा सकता था।[viii]

अंग्रेजी शासन का उद्योग, वित्त और व्यापार पर प्रभाव

RRIJM 2015, All Rights Reserved

किसी भी देश की व्यापक स्तर पर गरीबी होना उस देश का अल्प विकास का सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण है। औपनिवेशिक काल में बढ़ती हुई गरीबी इस देश के आर्थिक पिछड़ेपन का प्रमाण थी।[ix] भारत भेजा ताकि वे भारतीय कारीगरों को अंग्रेजों और यूरोपीय बाजारों के लिए उपयुक्त सामान बनाने के तरीके सीख सके।[x]

साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने हित में चलाए गए, कार्यक्रम एवं नीतियाँ ही उपनिवेश के शोषण के कारण बनती है। रजनी पाम हत्त की रचना ''आज का भारत'' को सभी विद्वान एकमत से औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का श्रेष्ठतम ग्रंथ स्वीकार करते है। इसमें मार्क्स के विचारों एवं टिप्पणियों को उद्वत करते हुए एक सिद्धांत विकसित किया गया है जो अंग्रेजों की शोषण प्रवृत्तियों को तीन चरणों में विभक्त करता है। (1) वाणिज्यिक पूँजीवाद का चरण (1757-1813), (2) औद्योगिक पूँजीवादी का चरण (1813-1857), (3) वित्तीय पूँजीवाद का चरण (1858-1947) उपनिवेशवाद की ये तीनों चरण शाषण के रूप से सम्बंधित है।[xi]

भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना ईस्ट-इण्डिया कंपनी द्वारा 31 दिसंबर 1600 को चार्टर प्राप्ति व उनके भारत आगमन से प्रारंभ हुई। इस चार्टर में कंपनी के गर्वनर एवं 24 सदस्यों को प्रबंध से अधिकार दिए गए, पूर्वी भारतीय व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार दिया गया तथा वह सीमित आकार (6 जलपोत, 6 अस्त्र-शस्त्र सहित लघु नौका और 500 नवसैनिक) की नौसेना रखने की अनुमति दी गई।[xii] महान मुगलों की विशिष्ट शक्ति को वायसरायों ने तोड़ा और जिस समय ये सभी एक दूसरे के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे, ब्रिटिश इन पर टूट पड़े और उन्हें अपने आधीन करने में सफल हुए।[xiii] ब्रिटिश शासकों के शोषणकारी स्वरूप के विषय में मार्क्स ने लिखा है कि ब्रिटेन ने किसी भी तरह का पुनः निर्माण किए बिना ही संपूर्ण भारतीय समाज का ढाँचा ध्वस्त कर दिया। इस तथ्य के संदर्भ में 1944 में जवाहरलाल नेहरू ने लिखा कि भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना भारत के लिए एक ऐसी घटना थी जिसकी तुलना किसी अन्य आक्रमण अथवा आर्थिक परिवर्तन से नहीं की जा सकती है।[xiv] 1908 में लेनिन ने भी लिखा कि उस हिंसा तथा लूट का कोई अंत नहीं है, जिसे भारत में ब्रिटिश शासन के नाम से जाना जाता है।[xv]

1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट (Regulating Act) तथा 1793 के स्थायी बंदोबस्त ने आधुनिक ब्रिटिश राज्य का सूत्रपात किया, जो न केवल एक प्रशासनिक राज्य अपितु एक हस्तक्षेप करने वाला नियमनवादी तथा घेटाबंदी करने वाला परिवेष्टक राज्य (Encircling) भी सिद्ध हुआ।[xvi] 1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट से बंगाल के शासन को केन्द्रीय शासन के रूप में परिवर्तित करते हुए एक चार सदस्यीय परिषद की स्थापना की गई तथा वॉरेन हेस्टिग्सं को गवर्नर जनरल बनाया गया, जिन्होंने एक प्रशासनिक विशिष्ट वर्ग को संस्थागत किया और भारत में आधुनिक नागरिक प्रशासन की नींवे डाली।[xvii] शीघ्र ही कंपनी और उसके कर्मचारियों ने सत्ता और संप्रदा का दुरपयोग करना आरंभ कर दिया। भारतीय दस्तकारों, किसानों और व्यापारियों को विवश किया गया कि वे अपना उत्पाद उन्हें सस्ते में बेचे और उनसे महंगे दामों पर उनका उत्पाद खरीदें। इस तरह स्वयं अंग्रेजी शासकों ने कंपनी के शासन के इस काल को ''खुली और शर्महीन लूट'' का नाम दिया।[xviii]

1813 तक ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के पश्चात राजनीतिक रूप से शक्तिशाली हो गए थे। 1813 के चार्टर एक्ट के पश्चात ब्रिटिश सरकार कंपनी को चाय एवं चीन को छोड़कर भारत को ब्रिटेन के सभी व्यापारियों के लिए स्वतंत्र व्यापार के लिए छुट मिल गई।

ये व्यापारी पुराने व्यापारियों से भिन्न प्रकृति के थे। ये व्यापारी भारत से निर्मित समान खरीदने के लिए नहीं, बल्कि ब्रिटेन में निर्मित समान को बेचने आर कच्चे माल को खरीदने के लिए आए थे।

1850 के पश्चात आधुनिक उद्योग का विनाश हो गया। हस्तशिल्प के पतन के बाद कारीगरों को रोजगार उपलब्ध नहीं कर पाए इसके कारण अधिकांश कारीगरों को कृषि का सहारा लेना पड़ा।[xix]

ब्रिटिश निवेशकों की प्राथमिक रूचि चाय, कॉफी, रबर, नील बागानों में थी। नील के बागानों में गुलामों से कार्य कराया जाता था जिसकी अत्यंत दयनीय स्थिति थी। बिहार, असम, उत्तर प्रदेश में गुलामों की यही स्थिति थी।[xx]

जूट उद्योग

भारत में पहला जूट कारखाना सेरामपुर (बंगाल) के निकट रिशरा में 1855 ई. में शुरू किया गया। इस उद्योग पर पूरी तरह यूरोपियनों का अधिपत्य रहा। इसलिए इसके विकास

की अधिक संभावनाऐं थी। इसके लिए बंगाल में उपलब्ध पटसन अत्यन्त उपयोगी था। 1886 में इसकी लागत पूँजी अपने शिखर पर थी जिसकी वजह से उत्पादन पर नियंत्रण लगाने के लिए भारतीय जूट मिल संघ का निर्माण किया गया। इस ब्रिटिश जूट उद्यम को भारतीय सस्ता श्रम और रेशा प्रदान करते थे। जी. बी. जोशी ने ''इकोनॉमिक सिचवेशन इन इंडिया'' नामक लेख में लिखा हैं कि ''स्वदेशी'' उद्योगों के प्रत्यक्ष विकास के लिए उन्हें किसी भी मूल्य पर प्रोत्साहन न देकर यथासंभव उन्हें असमर्थ बनाए रखना ही ब्रिटिश राष्ट्र के हित में है।[xxi] 1913 में संयुक्त राज्य अमेरिका को भारतीय मिलों ने 72 लाख पौंड के जूट उत्पादन निर्यात किए जबकि ब्रिटेन ने मात्र 15 लाख पौंड के।[xxii]

जूट उद्योग विश्व व्यापार की स्थितियों पर निर्भर करता हैं क्योंकि जूट की वस्तुओं की माँग परिवर्तनशील होती है। इसलिए जब भी विश्व व्यापार में गिरावट आती तो भारतीय जूट उत्पादों की माँग घट जाती है। इस समस्या के समाधान के लिए 1884 में इंडियन जूट मिल एसोसिएशन (IIMA) जो 1902 तक ''इंडियन जूट मैन्युफैक्वर्स'' के नाम से जानी जाती थी, का निर्माण किया गया। आईजेएमए का मुख्य कार्य कीमतों के स्तर में स्थिरता को बनाया रखना था। इसके लिए एसोसिएशन ने कार्यदिवस को कम कर उत्पादन मे कटौती की। एसोसिएशन ने 1886 में सबसे पहले मिलों को अपेक्षाकृत कम घाटों तक काम करने के लिए राजी कर लिया। यही कार्य 1890 में भी किया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि मुद्रास्फीति के दौरान भी जूट उद्योग में 60-70 प्रतिशत तक शुद्ध लाभ प्राप्त किए।

1939 को आधार वर्ष माने तो 1945 में समस्त उद्योगों का मुनाफे 234 बढ़ कर हो गया, जबकि जूट लिए वह 328 पहुंच सूचकांक हो गया। आजादी के बाद जूट उद्योग के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ क्योंकि देश विभाजन के पश्चात अधिकांश कच्चे माल का क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया एवं जबकि मिलें भारत में रह गई।

सूती कपड़ा उद्योग

19वीं शताब्दी के मध्य में आधुनिक सूती कपड़ा उद्योग का इतिहास प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम 1818 ई. में कलकत्ता में एक मिल की स्थापना की गई। सूती कपड़ा मिलों का विकास पूर्णतया भारतीय पूँजी के द्वारा ही हुआ। बम्बई में पारसी कावसजी नानाभाई दावर ने 1853 ई. में पहला कारखाना स्थापित किया। भारत और ब्रिटेन के बाजारों में सूती कपड़ों के लिए बढ़ी प्रतियोगिता को ध्यान में रखते हुए ब्रिटेन ने भारतीय उद्योग को हानि पहुँचाने के लिए 1896 में भारत में निर्मित कपड़े पर 3.5 प्रतिशत की दर से चुंगी लगाई। सूती कपड़ा उद्योग के प्रति सौतेला व्यवहार के लिए रमेश चंद दत्त ने लिखा कि है कि- ''जब विश्व की सभी सरकारें घरेलू उत्पादकों को प्रोत्साहित करने में लगी हुई थी, भारतीय सरकार सूती मिलों के साथ सौतेला व्यवहार कर रही थी। यहाँ तक की मोटे कपड़ों की मिलों को भी हानि पहुँचाई गई। जबकि वे कहीं भी लेकाशायर से प्रतियोगिता में नहीं थे। इसलिए सूती कपड़ों के उत्पादन में गिरावट आई, मशीनों की माँग और मिलों के काम में कमी हुई और परिणामस्वरूप सूती कपड़े का आयात बढ़ा।[xxiii] लोहा और इस्पात उद्योग का विकास प्रथम विश्व युद्ध के अवसर पर ही हो सकी और मशीनों का उत्पादन अब भी शुरू नहीं हुआ था।[xxiv]

1880 से 1895 के बीच सूती कपड़ा उद्योग में पहले की अपेक्षा तीव्र गति से वृद्धि हुई। इन दिनों इतनी लाभ हुआ कि विनियोजित पूँजी 4 वर्ष में ही वापस आ जाती थी। स्वदेशी आंदोलन को आधुनिक उद्योगों के विस्तार का आधार स्तंभ कहा जाए तो गलत नहीं होगा। 1914 तक भारत विश्व का चौथा उत्पादक देश बन गया।[xxv]

लोहा और इस्पात उद्योग

भारत लौह और इस्पात उद्योग में प्राचीन काल से ही श्रेष्ठ उत्पादक था। भारत में बिहार के मगध में लौह इस्पात उद्योग के विकास के कारण ही कृषि के क्षेत्र में क्रांति हुआ था। आधुनिक लौह विनिर्माण उद्योग के निर्माण के लिए कई प्रयास किए पर सरकारी समर्थन व प्रौत्साहन के अभाव में ये विफल रहे। 1830 में मद्रास सिविल सर्विस के एक सदस्य जे. एस. हीथ के प्रयासों से मद्रास के दक्षिण में 120 मील की दूरी पर स्थित पोर्टो नोवों में लोहे का कारखाना लगाया गया। पूँजी की कमी के कारण 1833 में ''पोर्टो नोवो स्टील एंड आयरन कंपनी'' ने इसका अधिग्रहण कर लिया। कंपनी के अच्छे उत्पादन परिणामों के बावजूद ब्रिटिश हितों के कारण इस कंपनी के कारोबार के अधिग्रहण के लिए 1833 में ''ईस्ट इंडिया आयन कंपनी'' बनो। कंपनी ने चार अन्य उत्पादन केन्द्रों का निर्माण किया लेकिन पूँजी के अभाव व

RRIJM 2015, All Rights Reserved

ईंधन के रूप में इस्तेमाल किए जाने वाले काठ कोयले की दुर्लभता के कारण एक-एक करते सारे उत्पादन केन्द्र 1858-1974 के बीच बंद हो गए और इसके बाद कंपनी का अस्तित्व ही समाप्त हो गया।[xxvi]

लोहा और इस्पात उद्योग के विकास में टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी (टिस्को) का 1907 में स्थापना की गई। यह कंपनी जमशेदजी नौशेखान जी के प्रयासों का फल थी। सभी कठिनाइयों के पश्चात् टिस्को ने 1972 में अमेरिका तकनीकी जानकारी और जर्मन मशीनरी से कच्चे लोहे का उत्पादन आरंभ किया।

ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी हित के कारण आरंभ में टिस्को की कोई संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ। लेकिन टाटा बंधु ने सभी कठिनाईयों का सामना करते हुए आगे बढ़ते गए। प्रथम विश्व युद्ध के समय कंपनी को संरक्षण प्राप्त हुआ। जिससे टिस्को ने 1923-24 को संकट से पार किया। टिस्को जैसे ही अपने पैर पर खड़े हुई सरकार की संरक्षण को त्याग दिया।[xxvii] भारत में टिस्को कंपनी की समृद्धि के चार कारण उत्तरदायी थे-

(i) संयंत्र की अवस्थिति के कारण प्राप्त प्रारंभिक लाभ।
(ii) उधम के प्रति सरकार का अनुकूल दृष्टिकोण जिसके पीछे शायद भारतीय बाजार में ब्रिटिश इस्पात की गिरती स्थिति थी।
(iii) प्रथम विश्व युद्ध में टिस्को की निष्ठापूर्वक सेवा के पुरस्कार और किसी अन्य युद्ध की स्थिति में उद्योग के बीमा के तौर पर संरक्षण।
(iv) 1923-33 की अवधी के दौरान टिस्को द्वारा लागतों में भारी कटौतो।[xxviii]

इस सभी कारणों के साथ आयस्क का सस्ता होना भी एक बड़ा कारण था। जैसे टाटा कंपनी के सलाहाकार इंजीनियर जुलियन केनेडी का यह वक्तव्य ''एक टन कच्चा लोहा बनाने के लिए प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व तक लौह अयस्क की लागत यहाँ 15 सेंट आती है जबकी पिट्टसवर्ग में 8 डॉलर।''[xxix]

युद्ध के समय उसने टिस्को का 90 प्रतिशत उत्पादन और एक महीने के दौरान 97 प्रतिशत उत्पाद लिया। इसी तरह टाटा भी सरकार पर इतना निर्भर थे कि भारत में उनकी 90 प्रतिशत ब्रिकी अंतगोतत्वा किसी न किसी रूप में सरकार, रेलवे और सार्वजनिक संस्थाओं को होती थी।[xxx]

प्रथम विश्व युद्ध के समय भारतीय उद्योग विकास न हुआ निम्न कारण रहे-

(i) भारत में स्थापित उद्योग की पूंजी की जरूरत थी। परंतु ब्रिटिश सरकार कोई सहायता नहीं दी।
(ii) ब्रिटिश सरकार भारतीय उद्योगों को सहायता देने में असफल रही बल्कि विदेशी उद्योगों का प्रोत्साहित किया।
(iii) यातायात रेल की किरायों में पक्षपात करते थे।
(iv) प्रर्याप्त तकनीकी शिक्षा के अभाव में भारतीय उद्योग का विकास न हुआ।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद सरकार की नीति में, आर्थिक क्षेत्र में लक्ष्य औद्योगिकरण था। हालाँकि सरकार अपना हित देख रही थी। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1916 में ''इंस्टीटयूट ऑफ मांइनिग इंजीनियर्स' के अध्यक्ष सर थॉमस हॉलैण्ड के सभापतित्व में 'भारतीय औद्योगिक अयोग' का गठन किया गया। 1918 में आयोग ने कहा कि ब्रिटिश सरकार भारत में औद्योगिकरण को प्रोत्साहित, तकनीकी शिक्षा और अनुसंधान को विकसित करे, औद्योगिक बैंकों का निर्माण करे और निजी उद्योगों को वाणिज्य-विकास के लिए जहाँ भी आवश्यक ही सीधी आर्थिक सहायता प्रदान करें।[xxxi]

1921 में आयोग की सलाह से एक वित्त आयोग का गठन किया गया। अपनी जाँच रिर्पोट में वित्त आयोग ने 1922 में कहा कि प्रत्येक मामलों की जाँच करके इसे विवेक युक्त संरक्षण प्रदान किया जाए। फलस्वरूप 1923 में टैरिफ बोर्ड की गठन किया गया और 1923-39 के दौरान टैरिफ बोर्ड ने 51 उद्योगों की जाँच की और 11 उद्योगों जिनमें आयरन एंड स्टील, चीनी, कागज, सूत्रमिल, नमक, दिया सलाई, जरी, गेहूँ चावल के विभिन्न उत्पादों को संरक्षण प्रदान किया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय पूँजी के अभाव में उद्योगों का विकास में बाधा हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सूती वस्त्र उद्योग अपने पैरों पर खड़ा हो गया।

1943 तक उत्पादन वृद्धि के पश्चात् उत्पादन में गिरावट होनी शुरू हो गई। इसका मुख्य कारण मशीनों का पुराना होना तथा कारीगरी की निम्न जीवन स्तर होना था। मशीनों के खराब पुर्जो को नहीं बदला गया। इसी में रजनीपाम दत्त का कहना था कि ब्लोरूप मशीनों का उदाहरण से पता चलता है कि उद्योग में आज इस्तेमाल होने

वाली इन कुल मशीनों में से 11.5 प्रतिशत मशीनें 1890 से पहले, 11.1 प्रतिशत मशीने 1906-1910 के बीच, 18.06 प्रतिशत मशीने 1921-1925 के बीच और 11.1 प्रतिशत मशीने 1936-40 के बीच लगाई गई। सूत खींचने और चलाने वाले फ्रेमों में से 35.5 प्रतिशत फ्रेम 1910 से पूर्व लगाए गए थे।[xxxii]

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटिश पूंजीपति का एकाधिकार समाप्त कर दिया। जिसे भारतीय उद्योगपति शक्तिशाली हो गए। जिसे पूंजी को निवेश करना आरंभ किए। भारत के बड़े-बड़े उद्योगपतियों ने स्वयं ही भारत के आशिंक विकास के लिए योजना बनाई जिसे ''बंबई प्लान'' के नाम से जाना जाता है। भारतीय औद्योगिकरण के विकास के लिए अपने नीति में परिवर्तन किए। ब्रिटेन का हित अब भारतीय मध्यवर्ग से समझौता कर ले। 1944 के अंत में भारत के बड़े पूँजी पति वर्ग जैसे टाटा, बिरला, सिंघानिया आदि, ब्रिटेन, अमेरिका में अपने प्रतिनिधि संगठन ले गए। इन प्रतिनिधि मंडल और ब्रिटिश पूँजीपतियों के वार्तालाप के कारण ही 1945 में प्रथम मिश्रित इंडियन ब्रिटिश कंपनी का निर्माण हुआ। भारत में उद्योगों का विकास समृद्धि होने लगा।

निष्कर्ष

भारत में अंग्रेजी शासन के परिणामस्वरूप औद्योगिक विकास धीमी गति से रहा। भारत में उद्योग तब विकसित हुए जब इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, बेल्जियम, इटली और अन्य यूरोपीय देशों में बड़े-बड़े उद्योग स्थापित हो चुके थे। इसलिए भारतीय उद्योग विदेशी उद्योगों से प्रतियोगिता करने में असमर्थ थे। विकसित देशों क उद्योगों को अपनी सरकारों का समर्थन और उनकी सुरक्षा उपलब्ध थी इसके विपरीत भारत में, मुक्त व्यापार सिद्धांत की आड़ में ब्रिटिश सरकार ने 1924 तक भारतीय उद्योगों को कोई सुरक्षा प्रदान नहीं की। टैरिफ बोर्ड की स्थापना और सुरक्षा प्रदान करने वाले करों के लगाने के बाद भी भारतीय उद्योगों को कोई विशेष मदद नहीं मिल सकी क्योंकि औपनिवैशिक अभियान के सिद्धांत के सामने सुरक्षा के सिद्धांत का महत्त्व कम था। फिर भी सुरक्षा प्रदान करने की नीति से कुछ उद्योगों को फायदा हुआ। निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि भारतीय उद्योगों के विकास के लिए ब्रिटिश नीतियाँ ही मुख्य रूप से जिम्मेदार थी। भारतीय औद्योगिक विकास ब्रिटिश वित्तीय पूँजी पर आश्रित था और भारतीय उद्योगों पर ब्रिटिश पूँजी का नियंत्रण था। इस लिए हमारे औद्योगिक विकास अवरुद्ध रहा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[i] ए. आर. देसाई, सोशल बैक ग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनेलिज्म, पॉपुलर बुक डिपो बम्बई, 1959, पृष्ठ 7

[ii] वही, पृष्ठ 6

[iii] वी. वी. भट्ट, आस्पेकट ऑफ इकोनॉमिक चेंज एण्ड पॉलिसी इन इंडिया, पृष्ठ 90

[iv] इंडिया इंडस्ट्रीयल कमीशन रिर्पोट (1916-1918) खण्ड-I, पृष्ठ 6

[v] आर. पी. दत्त इंडिया टुडे, मनीषा ग्रंथालय, प्रा. लिमिटेड, कलकत्ता, 1979, पृष्ठ 119

[vi] वही, पृष्ठ 108

[vii] ए. आर. देसाई, भारत का विकास मार्ग, माक्सवादी दृष्टिकोण, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 114

[viii] वही।

[ix] शिवानी किंकर चौबे, भारत में उपनिवेशवाद स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रवाद, ग्रंथ शिल्पी दिल्ली, 2000, पृष्ठ 48

[x] ए. आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, बम्बई 1981, पृष्ठ 64

[xi] आर. पी. दत्त, आज का भारत

[xii] इंडियन कॉन स्टीटयूशनल डॉक्यूमेंटस खण्ड-I, पृष्ठ 4

[xiii] शिवानी किंकर चौबे, भारत में उपनिवेशवाद स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रवाद, ग्रंथ शिल्पी दिल्ली, 2000, पृष्ठ 48

[xiv] वही।

[xv] वही, पृष्ठ 49

[xvi] लक्शमेशवर दयाल, स्टेट एंड द प्यूपील पॉलिटिक्स हिस्ट्री ऑफ गर्वनमेंट इन इंडिया, मितल पब्लिकेशन नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ 90

[xvii] कृष्ण दत्त, आधुनिक भारत का इतिहास, अनबुक्स, मेरठ 1989, पृष्ठ 66-96

[xviii] आर. पी. दत्त, द इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया, विक्टोरियन ऐज, लंदन, 1950, पृष्ठ 373

[xix] एस. के. पाण्डेय- आधुनिक भारत का इतिहास, इलाहाबाद, 2014, पृष्ठ 125

[xx] आर. पी. दत्त द इकोनॉमिक हिस्टी ऑफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया, विक्टोरिया, ऐज लंदन, 1950, पृष्ठ 84

[xxi] विपिन चंद्र, द राईज एंड ग्राथ ऑफ इकोनॉमिक नेशनल्जिम इन इंडिया, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृष्ठ 314

[xxii] धर्मा कुमार (सं.) द कैम्ब्रिज इकॉनोनिक हिस्ट्री, खण्ड-2, ऑरियन्ट लोंगमैन, नई दिल्ली, 1984, पृष्ठ 507-508

[xxiii] आर. सी. दत्त, द इकोनॉमिक हिस्टी ऑफ ब्रिटिश रूप इन इंडिया, विक्टोलिया एंड लंदन, 1950, पृष्ठ 84

[xxiv] आर. पी. दत्त, इंडिया टुडे, मनोशा ग्रंथालय, प्रा. लिमिटेड, कलकत्ता 1979, पृष्ठ 105-108

[xxv] एस. के. पाण्डेय- आधुनिक भारत का इतिहास, इलाहाबाद, 2014, पृष्ठ 125

[xxvi] आर. पी. दत्त द इकोनॉमिक हिस्टी ऑफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया, विक्टोरिया, ऐज लंदन, 1950, पृष्ठ 84

[xxvii] धर्मा कुमार (सं.) द कैम्ब्रिज इकानॉमिक हिस्ट्री, खण्ड-2, ओरियंट लोंगमैन, नई दिल्ली, 1984, पृष्ठ 490

[xxviii] अमित कुमार बागची, प्राइवेट इन्वेस्टमेंट इंन इंडिया, ओरियंट लोंगमैन, नई दिल्ली, 1975, पृष्ठ 292

[xxix] वही, पृष्ठ 297

[xxx] वही, पृष्ठ 307

[xxxi] इंडियन इंडस्ट्रीयल कमीशन रिर्पोट (1916-1918) खण्ड-7, पष्ठ 229-242

[xxxii] आर. पी. दत्त, इंडिया टुडे, मनीषा ग्रंथालय प्रा. लिमिटेड, कलकत्ता, 1979, पृष्ठ 192-196

RRIJM 2015, All Rights Reserved